अध्याय-13

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग-नामक 13वाँ अ0।।

[1-18 ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विषय]

श्रीभगवानुवाचः-इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रं इति अभिधीयते। एतत् यः वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। 13/1

कौन्तेय इदं शरीरं क्षेत्रं इति	हे अर्जुन! यह {तेरा मुकर्रर} शरीर {रूपी रथ ही महाभारत का धर्मयुद्ध} 'क्षेत्र'← इस नाम से
अभिधीयते एतत् यः वेत्ति	{धर्म & कर्मभूमि} कहा जाता है। इस {कलि-अंत+कृतयुगादि के एक्स्ट्राऑर्डीनरी रथ} को जो जानता है
तं तद्विदः क्षेत्रज्ञ इति प्राहुः	उसको वह {द्वापर के ऋषि-मुनि} विद्वान {शरीर रूपी} 'क्षेत्र का ज्ञाता' ऐसे कहते हैं।

क्षेत्रज्ञं च अपि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानं यत् तत् ज्ञानं मतं मम।। 13/2

भारत सर्वक्षेत्रेषु क्षेत्रज्ञं अपि	हे भरतवंशी! {ऐसे तो यथार्थ में} सारे {प्राणियों के} शरीररूप में क्षेत्रों का ज्ञानी भी
मां विद्धि च क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः	{इस पु. संगम में} मुझ {शिव+बाबा} को जान और {इस} देह व देह के ज्ञाता {शिवज्योति} का
यत् ज्ञानं तत् ज्ञानं मम मतं	जो ज्ञान है, वो {ही इस दुनियाँ में रथी & सारथी का सच्चा} ज्ञान है← {ऐसा} मेरा मत है।

तत् क्षेत्रं यत् च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्। स च यो यत्प्रभावश्च तत् समासेन मे शृणु।। 13/3

तत् क्षेत्रं यत् यादृक् च	वह {अर्जुन की} क्षेत्र रूपी देह जो जैसी {अति की पतित-व्यभिचारी} है और {महाविकारियों में}
यद्विकारि च	जैसा {कामुक महानतम} विकारी है {'मैं पतितन को राजा'=तुलसीदास} और {अपने-2 शास्त्रों में स्वकथा}
यत् यतः	{लिखी भी है,} जो {बालोंरहित बच्चों-जैसी लचीली देह का} है, जहाँ {अहं+द+गंद गाँव• (कायमगंद तालुका)} से है,
च स यः च	और वह {जन्म से देहांकारी ब्रह्मापुत्र} जो {अहं+दा•+बाद का ही} है, और {बदला लेने वाले नाग-}
च यत्प्रभावः	{स्वभावी धृष्टद्युम्न जैसा ढीठ, निर्लज्ज मार्शल है} और जिस {हिसाब-किताब चुक्तू के} प्रभाव वाला है-

तत् समासेन मे शृणु	वह सब संक्षेप में मुझ {बहुरूपिया शिवबाबा से सम्मुख} सुन। {बाप का परिचय बाप ही दे सकता है}

{मुरली के प्रूफ→ गांवड़े का छोरा-"जो (जब) गोरा है तो ताज होना चाहिए। साँवरा है तो ताज कहाँ से आवेगा? ..... गाँव का छोरा तो गरीब होगा ना।" (मु.ता.8.2.70 पृ.2 मध्य) गंदा गाँव-"इतना ऊँच-ते-ऊँच बाप कैसे छी-2 गाँव {अहं+द+गंद} में आते हैं।" (मु.ता.6.7.84 पृ.2 मध्य) ✕ फर्रुखाबादी-"बाप को मालिक कहा जाता है। फर्रुखाबाद में {कायम+गंद तरफ} मालिक को मानते हैं। (क्योंकि) घर का मालिक तो बाप ही होता है। बच्चों को बच्चे ही कहेंगे। जब वह भी बड़े (समझदार) होते हैं, (अलौकिक) बच्चे पैदा करते हैं तब फिर मालिक बनते हैं। यह सभी राज़ समझने की हैं।" (मु.ता.11.4.68 पृ.3 अंत)

सर्व सेण्टर्स का बीज •अहंदाबादी -"अहमदाबाद को सभी से ज्यादा सर्विस करनी है; क्योंकि अहमदाबाद (लाखों तादाद के) सभी सेंटर्स का बीजरूप है।" (अ.वा.24.1.70 पृ.190 मध्य)।

शरीर की 20-25 की आयु-"आगे (ॐ मंडली में अव्वल नं. वाले) जो (1942-47) में मरे थे, फिर भी बड़े हो कोई 20-25 के ही हुए होंगे। ज्ञान भी ले सकते हैं।" (मु.ता.16.2.67 पृ.1 अंत) यहाँ दिए गए महाभारत के 2 श्लोक भी बेहद बाप के 'प्रत्यक्षता वर्ष 1976' में दैहिक आयु 32 वर्ष से सम्बंधित हैं।

•**'द्वात्रिंशद्वर्षवयसि भौतिकशरीरं परित्यज्य परब्रह्मणि लीनमासीत्'** (अमरकोश में कल्पद्रुम, 'शङ्कर' शब्द)

'द्वात्रिंशदस्योज्वलकीर्तिराशेः समाव्यतीयुः किल शङ्करस्य'(महाभा./3-22 8-6)(मंगलकारके त्रिकाण्डशेष)

इसके अलावा 'U TUBE, ADHYATMIK VIDYALAYA' के एडवांस कोर्स में भी ढेर सारे पक्के प्रमाण भी मिलेंगे।

ऋषिभिः बहुधा गीतं छन्दोभिः विविधैः पृथक्। ब्रह्मसूत्रपदैश्च एव हेतुमद्भिः विनिश्चितैः।। 13/4

ऋषिभिः बहुधा	{शास्त्रों में} ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से {'एको सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' ऋग्वेद 1-164-46 में भी बोला है।}
विविधैः	{कि} नाना प्रकार की {स्तुतियों, आरतियों, सहस्रनामों, चालीसा आदि वा सभी वेदों-ग्रंथों के}

छन्दोभिः पृथक् च	वेदमंत्रों से पृथक्-2 अथवा {आरण्यक-ब्राह्मण-स्मृतियों-सूत्रग्रंथों उपनिषदों आदि के या}
हेतुमद्भिः विनिश्चितैः	{महाभारतादि पुराणों के} प्रमाण सहित सुनिश्चित {सुभाषितों,कवित्तों या ग्रामीण गीतों} द्वारा,
ब्रह्मसूत्रपदैः एव गीतं	ब्रह्मसूत्रपदों द्वारा {वा देशी-विदेशी भविष्यवेत्ताओं द्वारा} भी {शिवबाबा का ही} वर्णन है-

महाभूतानि अहङ्कारो बुद्धिः अव्यक्तं एव च। इन्द्रियाणि दश एकं च पञ्च च इन्द्रियगोचराः।। 13/5

महाभूतान्यहंकारः बुद्धिः च एव	{पृथ्वी-जलादि 5 जड़} महाभूत,{देह का} अहंकार, बुद्धि ऐसे ही {अति प्रबल}
एक मव्यक्तं दश इन्द्रियाणि	{संकल्प-विकल्प कर्ता} एक अव्यक्त मन {सहित नेत्रादि 5 ज्ञान+ हाथ-पाँवादि 5 कर्म}-इन्द्रियाँ
च पंच इन्द्रियगोचराः च	&5 {ही स्वर्ग में संभोग-मीडिया} ज्ञानेन्द्रियों के {शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध} विषय-भोग और

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातः चेतना धृतिः। एतत् क्षेत्रं समासेन सविकारं उदाहृतं।। 13/6

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं चेतना धृतिः	इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, चेतना, धारणाशक्ति {और उपरिवर्णित कुल 23 तत्त्व}
संघातः एतत् समासेन	{में से सभी का सदा अविनाशी} समुदाय {रूप अर्जुन की पुरुषोत्तम संगमयुगी देह}, यह संक्षेप में
सविकारं क्षेत्रं उदाहृतं	{काम-क्रोध-लोभादि विश्व के तीव्रतम आवेगी} विकार सहित क्षेत्र {रूपी शरीर} कहा गया है।

अमानित्वं अदम्भित्वं अहिंसा क्षान्तिः आर्जवं। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यं आत्मविनिग्रहः।। 13/7

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा	निर्मानभाव, पाखंडहीनता, {सांसारिक तुच्छ-श्रेष्ठ कोई भी} प्राणीमात्र को दुःख न देना,
क्षांतिः आर्जवं आचार्योपासनं	क्षमाभाव, सरलता, {आत्म-स्मृतिपूर्वक साकारी सो निराकारी} शिवाचार्य की उप+आसना,
शौचं स्थैर्यं आत्मविनिग्रहः	{म.व.कर्म की} शुद्धता, {मन की} स्थिरता {और मन-बुद्धिरूप} चित्त का विशेष संयम;

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहङ्कार एव च। जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनं।। 13/8

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहंकार:	{ज्ञानमयी} इन्द्रियों के {शब्द-स्पर्श-रूप-रसादि} विषयों में वैराग्य, निरहंकारी विदेहीभाव,
च एव जन्ममृत्युजराव्याधि-	और इसी प्रकार जन्म-मृत्यु और बुढ़ापा {आदि दु:ख,तन-मनादि की कोई भी} बीमारी
दु:खदोषानुदर्शनं	{आदि कल्पांत/महाविनाश के अंतिम जन्म के समझे हुए इन पराये} दु:खों के दोष अपना जैसा अच्छे से देखना;

असक्ति: अनभिष्वङ्ग: पुत्रदारगृहादिषु। नित्यं च समचित्तत्वं इष्टानिष्टोपपत्तिषु।। 13/9

पुत्रदारगृहादिषु असक्ति: अनभिष्वंग: च	पुत्र, स्त्री, घर आदि {दैहिक संबंधों} में अनासक्ति, मोहरहित होना और
इष्टानिष्ट उपपत्तिषु नित्यं समचित्तत्वं	चाही-अनचाही {रोज़मर्रे की अनेक छोटी-बड़ी} घटनाओं में सदा एकरस रहना,

मयि च अनन्ययोगेन भक्ति: अव्यभिचारिणी। विविक्तदेशसेवित्वं अरति: जनसंसदि।। 13/10

अनन्ययोगेन मयि अव्यभिचारिणी	अनन्य सम्बंध से {एकमात्र} मेरे में {लगाव पूर्वक सदाकालीन} अव्यभिचारी {श्रद्धा-}
भक्ति: विविक्तदेशसेवित्वं	भक्ति-भावना, {सन्नद्ध विनाशी दुनिया से दूर मन-बुद्धि से} एकांतदेश {परब्रह्म लोक} में रहना
च जनसंसदि अरति:	और {प्रिय-अप्रिय वा समीपी हो, न हो कोई भी प्रकार के} मनुष्यों की भीड़भाड़ में अरूचि;

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं। एतत् ज्ञानं इति प्रोक्तं अज्ञानं यत् अत: अन्यथा।। 13/11

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं	अध्यात्मचिंतन में सदा लगे रहना, पंचतत्वों को {ईश्वरीय} ज्ञानार्थसहित पहचानना-
एतत् ज्ञानं• इति प्रोक्तं	{संक्षेप में} इतना •ज्ञान है' ← ऐसा {कपिल जैसे पु. संगमी पुराने-2 सत्वप्रधान विद्वानों द्वारा} कहा गया है।
अत: अन्यथा यत् अज्ञानं	इसके अलावा जो {भी मनुष्य-गुरुओं या देशी-विदेशी धर्मपिताओं का ज्ञान है}, सारा अज्ञान है।

•{यहाँ गीता के श्लोक 1 से 11 तक निराकार शिव ने अर्जुन/आदम के शरीर रूपी रथ/क्षेत्र और उसके आत्मिक गुणों-अवगुणों, शक्तियों & संस्कारों की सृष्टि के आदिकाल से लेकर कल्पान्तकाल तक के सारे विस्तार की संक्षेप में पहचान बताई है।}

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अमृतं अश्नुते। अनादिमत् परं ब्रह्म न सत् तत् न असत् उच्यते।। 13/12

यत् ज्ञेयं यत् ज्ञात्वा अमृतं	जो {परमपिता शिव ज्योति+परमात्मा} जानने योग्य है, जिसे जानकर {सदा} अमरता का
अश्नुते तत्प्रवक्ष्यामि तदनादिमत्	अनुभव करता है, उसे {मैं} कहता हूँ। वह आदिरहित {सुप्रीमात्मा+आदम दोनों}
परं ब्रह्म न सत् नासदुच्यते	{मिलकर} परब्रह्म परमेश्वर {कालक्रमानुसार संसार में} सत्, न असत् कहा जाता है।

सर्वत:पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं। सर्वत:श्रुतिमत् लोके सर्वं आवृत्य तिष्ठति।। 13/13

तत् सर्वत:पाणिपादं सर्वत:	वह सब ओर {बुद्धिरूपी} हाथ-पैर वाला, सब ओर {पुरुषोत्तम संगम में भी अपनी शक्तिमत्ता से}
अक्षिशिरोमुखं सर्वत: श्रुतिमत्	{त्रिनेत्री} आँख, {एकाग्र मन रूप} मस्तक, मुख वाला, सब ओर कान-{नाकादि ज्ञानेन्द्रियों} वाला
लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति	{शिव समान शंकर} संसार में सबको {योगऊर्जा से} घेरकर {हीरो रूप में ही स्थिरियम} रहता है।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितं। असक्तं सर्वभृत् चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। 13/14

सर्वेन्द्रियगुणाभासं	{अर्जुन के रथ में} सब इन्द्रिय-गुणों का आभास होता है। {फिर भी मन-बुद्धि से जैसे भूली हुई}
सर्वेन्द्रियविवर्जितं असक्तं चैव	सब इन्द्रियविहीन {की सदाकाल निराकारी स्टेज वाला, कोई में भी} अनासक्त होते भी
सर्वभृत् च निर्गुणं गुणभोक्तृ	सब {प्राणीमात्र} का पोषणकर्ता है और {वह} निर्गुण है {तो भी मुकर्रर रथ से} गुणों का भोक्ता है,

बहि: अन्तश्च भूतानां अचरं चरं एव च। सूक्ष्मत्वात् तत् अविज्ञेयं दूरस्थं च अन्तिके च तत्।। 13/15

तत् भूतानां बहि: चान्त:	वह {करैंट जैसी योगऊर्जा से ही} प्राणियों के बाहर और अंदर है {मन-बुद्धि से सदा}
अचरं चरं एव सूक्ष्मत्वात्तत्	अचल है। {जड़ देह से} चलायमान भी है, अतिसूक्ष्म होने से वह {अज्ञानियों द्वारा}
अविज्ञेयं च तत् दूरस्थं	{दिखा या} जाना नहीं जाता और वह {देह-दुनियाँ से} दूर {आत्मलोक/अर्श} में स्थित है
च तदन्तिके	फिर भी वह {खोपड़ी रूपा सहस्त्रासार/परम्ब्रह्म• लोक में रहते भी नं. वार स्मृति द्वारा ज्ञानियों के} निकट है।

•{पंचमुखी ब्रह्मा का ऊर्ध्वमुखी मुख ही परम्ब्रह्म है जो पु. संगम में भी सदा उपराम है; क्योंकि महादेव-पार्ट भी शिव का है।}

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तं इव च स्थितं। भूतभर्तृ च तत् ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।। 13/16

तत् अविभक्तं च भूतेषु	वह {परब्रह्म योगबल से} अविभाज्य है और {विभिन्न प्रकार के सभी} प्राणियों में
विभक्तमिव स्थितं च भूतभर्तृ	विभक्त हुआ सा रहता है और {वैकुण्ठ में भी} प्राणियों का भरण-पोषणकर्ता विष्णु है
च ग्रसिष्णु च प्रभविष्णु ज्ञेयं	{पु.संगमयुग में} तथा संहारकर्ता महारुद्र है और {शास्त्रों में} उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा ज्ञातव्य है।

{इसीलिए सदाशिव ज्योति समान बने शंकर का काशीकैलाशीवासी मूर्तिरूप सारी चतुर्युगी रूप संसार में सदा गुप्त है ही है।}

ज्योतिषां अपि तत् ज्योतिः तमसः परं उच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितं।। 13/17

तज्ज्योतिषामपि ज्योतिः	वह ज्योतिमान् {धरती के चेतन मानवीय} नक्षत्रों की भी ज्योति है, {इसीलिए ज्ञानसूर्य है,}
तमसः परं उच्यते ज्ञानं	{अज्ञान के} अंधकार से परे कहा जाता है। {वह अजन्मा होने से अखूट} ज्ञान {का भंडार} है,
ज्ञेयं ज्ञानगम्यं	{'गुह्यात गुह्यतरं' होने पर भी} जानने योग्य है, ज्ञान से पाने योग्य है {और पुरु. संगम में सदा}
सर्वस्य हृदि विष्ठितं	{स्मृति द्वारा} सबके हृदय में {संगमयुगी शूटिंग-प्रमाण प्राप्त योगबल की ऊर्जा से} विराजमान है।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं च उक्तं समासतः। मद्भक्त एतत् विज्ञाय मद्भावाय उपपद्यते।। 13/18

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं च	ऐसे {अर्जुन के साकार शरीर रूपी} क्षेत्र तथा {साक्षात् अगाध ईश्वरीय} ज्ञान और
ज्ञेयं समासतः उक्तं मद्भक्तः	{संगम में} जानने योग्य {शिवबाबा} को संक्षेप में कहा है। मेरा {श्रद्धावान भावना भरा} भक्त
एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते	इस {क्षेत्र, क्षेत्री-क्षेत्रज्ञ} को जानकर मेरे {ईश्वरीय/ऐश्वर्यवान राजाई} भाव को पाता है।

[19-34 ज्ञानसहित प्रकृति-पुरुष का विषय]

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धि अनादी उभौ अपि। विकारान् च गुणान् चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।। 13/19

प्रकृतिं च पुरुषं	{अर्जुन की देह में महाकाल रूपा अपरा} प्रकृति को और आत्मा {रूपा परा प्रकृति} को-
उभावपि अनादी एव	दोनों {बीजरूप परम आत्मा+ देहरूप बर्फीले लिंग} को भी अनादि,{अक्षय, ऑलराउंडर} ही
विद्धि च विकारान् च गुणान् एव	जानो और विकारों और {अनादिनिर्मित सत-रजादि घटने-बढ़ने वाले इन} 3 गुणों को भी
प्रकृतिसम्भवान् विद्धि	{दैहिक महाभूतादि 23 तत्वों वाली लिङ्गरूपा अनादि-अविनाशी} प्रकृति से उत्पन्न हुआ जानो।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते। पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते।। 13/20

प्रकृतिः कार्यकरणकर्तृत्वे	{इस बीजरूपा} प्रकृति को देहरूप कार्य में, {ज्ञान+कर्म}-इन्द्रियों के साधनरूप रचना में {रचता आदम द्वारा}
हेतुः उच्यते पुरुषः सुखदुःखानां	कारण रूप कहा जाता है। आत्मा को {युगानुरूप प्राणियों के प्रयास अनुसार} सुख-दुःखों के
भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते	भोक्तापने में {संगमी शूटिंग-प्रमाण अपने ही कर्मों के अविनाशी रिकॉर्ड को} कारण कहा जाता है;

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्। कारणं गुणसङ्गः अस्य सदसद्योनिजन्मसु।। 13/21

हि पुरुषः प्रकृतिस्थः प्रकृतिजान्	क्योंकि {चेतन} आत्मा {देहरूप अपरा} प्रकृति में स्थित प्रकृति से पैदा हुए
गुणान् भुंक्ते गुणसंगः	{क्रमशः सत्त्वादि} 3 गुणों को भोगता है। {सृष्टि के इन्हीं सत्वादि} गुणों में आसक्ति/लगाव
अस्य सदसद्योनिजन्मसु कारणं	इस {आत्मा} के सत्-असत् {दिव-दानव असुरादि} योनियों में जन्म का {एकमात्र} कारण है।

उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः। परमात्मा इति च अपि उक्तः देहे अस्मिन् पुरुषः परः।। 13/22

अस्मिन् देहे परः पुरुषः उपद्रष्टा च	इस {अर्जुन की तामसी} देह में परमपुरुष {सदाशिवज्योति भृकुटि मध्य में} समीपदृष्टा और
अनुमन्ता भर्ता भोक्ता च	{श्रेष्ठ} कार्यों की अनुमतिदाता, {महाविष्णु रूप से प्राणियों का} भरण-पोषणकर्ता, भोक्ता और
महेश्वरः परमात्मा इति अपि उक्तः	महान् ईश्वर 'शिव'+'परमात्मा' इस तरह {महेश्वर} भी कहा जाता है।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह। सर्वथा वर्तमानः अपि न स भूयः अभिजायते।। 13/23

य एवं पुरुषं च प्रकृतिं गुणैः सह	जो इस प्रकार {हीरो} पुरुष और {स्त्री रूपा} प्रकृति को {उन सत्वादि 3} गुणों के साथ
वेत्ति स सर्वथा वर्तमानः अपि	{विष्णु रूप से} जान लेता है, वह सब प्रकार से {आत्मस्थिति में} आचरण करता हुआ भी
भूयः न अभिजायते	पुनः {द्वैतवादी हिंसक दैत्यों के दुःखी संसार में लौटकर अगला} जन्म नहीं लेता।

ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति केचित् आत्मानं आत्मना। अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन च अपरे।। 13/24

केचित् ध्यानेन अन्ये सांख्येन	कुछ लोग {सृष्टि के आदि म. अंत के} चिंतन द्वारा, दूसरे सम्पूर्ण {ज्ञान की} व्याख्या से
योगेन च अपरे कर्मयोगेन	{अनन्य} योग द्वारा और अन्य {यज्ञ सेवा-} कार्य करते-{शिवबाबा की} स्मृति पूर्वक
आत्मनात्मानमात्मनि पश्यन्ति	अपनी मन-बुद्धि से {ज्योतिबिंदु} आत्मा को अपने {भरीपूरी भृकुटि} में देखते हैं।

अन्ये तु एवं अजानन्तः श्रुत्वा अन्येभ्यः उपासते। ते अपि च अतितरन्ति एव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।। 13/25

तु अन्ये एवं अजानन्तः अन्येभ्यः	किंतु कुछ अन्य ऐसा न जानते हुए, {शिवबाबा से सन्मुख न सुन,} दूसरों द्वारा
श्रुत्वा उपासते च ते श्रुतिपरायणाः	सुनकर {मानसिक स्मृतिपूर्वक} उपासना करते हैं और वे सुनाने वालों के आश्रित/आधीन
अपि मृत्युं अतितरन्ति एव	{बातों में फर्क होने पर} भी मृत्युलोक को पार कर {स्वर्ग में चले} ही जाते हैं।

यावत् सञ्जायते किञ्चित् सत्त्वं स्थावरजङ्गमं। क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तत् विद्धि भरतर्षभ।। 13/26

भरतर्षभ यावत् किंचित् स्थावरजंगमं	हे भरतवंश में श्रेष्ठ! जो कुछ जड़-चेतन {रूप परा-अपरा प्रकृति के}
सत्त्वं संजायते तत्	पदार्थ {संसार में} उत्पन्न होते हैं, वह {सब पु.संगम की मानसी शूटिंग में अनासक्त ज्ञानसूर्य},
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् विद्धि	लिंग+आत्मज्योतिशिव {रूप जगत्पिता} के संयोग से {अंतिम जन्म में उत्पन्न} जान।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरं। विनश्यत्सु अविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। 13/27

यः विनश्यत्सु सर्वेषु भूतेषु	जो {कल्पान्त कालीन} महामृत्यु पाते हुए सब {विभिन्न आकृति के श्रेष्ठ या निष्कृष्ट} प्राणियों में
समं तिष्ठन्तं अविनश्यन्तं	समान भाव से {समूची चतुर्युगी की रिहर्सल में योग-ऊर्जा द्वारा} बैठने वाले अविनाशी
परमेश्वरं पश्यति स पश्यति	परम+ईश्वर/{शिवज्योति+अव्यक्तमूर्ति} को देखता है, वही {ठीक} देखता है;

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितं ईश्वरं। न हिनस्ति आत्मना आत्मानं ततो याति परां गतिं।। 13/28

हि सर्वत्र समवस्थितं ईश्वरं समं	क्योंकि सर्वत्र {पुरुषार्थ-अनुसार} समान {योगऊर्जा से} उपस्थित ईश्वर को समान
पश्यन् आत्मना आत्मानं हिनस्ति	{भाव से} देखता हुआ {पुरुषार्थी} अपने मन से {पाप करते हुए} आत्मा का घात/पतन
न ततः परां गतिं याति	नहीं करता (गीता 6-5), तब {कलातीत, परमपदी विष्णु के वैकुण्ठ की} परमगति को पाता है

प्रकृत्या एव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः। यः पश्यति तथा आत्मानं अकर्तारं स पश्यति।। 13/29

च यः कर्माणि सर्वशः प्रकृत्यैव	और जो कर्मों को सब प्रकार से {संगमी शूटिंग में अपने-2 प्रकृतिगत} स्वभाव से ही
क्रियमाणानि पश्यति तथात्मानं	किया हुआ देखता है {और} उसी तरह अपने को {शिव परमपिता+परम आत्मा समान}
अकर्तारं स पश्यति	अकर्ता {मानता है}, वह {ठीक} देखता है। {बाकी सदाशिवोऽहं या ब्रह्माऽस्मि यहाँ कोई नहीं होता।}

यदा भूतपृथग्भावं एकस्थं अनुपश्यति। तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। 13/30

यदा भूतपृथग्भावं एकस्थं	जब प्राणियों की {आकृति में} भिन्नता को {सृष्टि के} एक {बीज आदम} में उपस्थित
अनुपश्यति च तत् एव विस्तारं	{विराट पुरुष को} देखता है और उससे ही {सृष्टि के अनेक धर्मों के} विस्तार को {जानता है},
तदा ब्रह्म सम्पद्यते	तब {उसे समूचे विश्व की हर प्रकार से समर्पित ऊर्ध्वमुखी साक्षात्} परम्ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।

अनादित्वात् निर्गुणत्वात् परमात्मा अयं अव्ययः। शरीरस्थः अपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।। 13/31

कौन्तेय अयं परमात्मा	हे {देहभाननाशिनी} कुंती के पुत्र! यह {तुरीया तत्व परमब्रह्म सहित हीरोपार्टधारी} परमात्मा
अनादित्वात् निर्गुणत्वात्	अनादि {एवं त्रिगुणातीत सदाशिव की निरंतर याद में टिकने कारण} त्रिगुणरहित होने से
अव्ययःशरीरस्थोऽपि	अमोघवीर्य है, देह में रहते भी {सदाशिव ज्योति समान सम्पूर्ण आत्मस्थ बनने से}
न करोति न लिप्यते	{पुरुषोत्तम संगमयुग की शूटिंग में} न कर्म करता है, न लिप्त होता है। {अकर्ता रहता है}

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यात् आकाशं न उपलिप्यते। सर्वत्र अवस्थितः देहे तथा आत्मा न उपलिप्यते।। 13/32

यथा सर्वगतमाकाशं सौक्ष्म्यात्	जैसे सर्वगामी {महान} आकाश {आत्मवत् 'अणोरणीयांसं' (गीता 8-9) जैसा} सूक्ष्म होने से
न उपलिप्यते तथा देहे सर्वत्र	उपलब्ध नहीं होता, {कुछ भी पकड़ नहीं आता,} उसी तरह शरीर में सब जगह {योग-ऊर्जा से}
अवस्थितः आत्मा नोपलिप्यते	स्थित हुआ {सूक्ष्म ज्योतिबिंदु परम+} आत्मा {रूप परमाकाश} उपलब्ध नहीं होता।

यथा प्रकाशयति एकः कृत्स्नं लोकं इमं रविः। क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।। 13/33

भारत यथैकः रविः इमं	हे ज्ञानाभा में रत! जैसे एक {जड़} सूर्य {एक स्थान से} इस {चाँद-सितारों-नक्षत्रों से भरे}
कृत्स्नं लोकं प्रकाशयति तथा	सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार {चेतन ज्ञान सूर्य बने विवस्वत की}
क्षेत्री कृत्स्नं क्षेत्रं प्रकाशयति	आत्मा {भ्रूमध्य से} सारे {वटवृक्षरूप विराट} शरीर को {संगम में भी} प्रकाशित करती है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः एवं अन्तरं ज्ञानचक्षुषा। भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुः यान्ति ते परं।। 13/34

एवं ये क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः अन्तरं च	ऐसे जो {अर्जुन के} शरीररूप क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ {सदाशिव (गीता 13-2)} के अन्तर को और
भूतप्रकृतिमोक्षं ज्ञानचक्षुषा	प्राणियों की {दैहिक} प्रकृति से मुक्ति को, {सम्पूर्ण बने त्रिनेत्री महादेव के} ज्ञाननेत्र द्वारा
विदुः ते परं यान्ति	{शिव को} जानते हैं, वे {परमपार्ट धारी हीरो रूप के परे-ते-परे} परमब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।